Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 17, Issue No. 2, October-2020, ISSN 2230-7540

हिन्दु संस्कृति के पर्व-त्योहार की कहानियों में निहित शैक्षिक मूल्यों के विभिन्न पक्ष

Manish Kumar[1]* Dr. Chandra Prakash[2]

[1] Research Scholar, R. R. B. M. University, Alwar, Rajasthan

[2] Research Supervisor, R. R. B. M. University, Alwar, Rajasthan

***सारांश** – भारतीय संस्कृति में व्रत, पर्व-त्योहार उत्सव, मेले आदि अपना विशेष महत्व रखते हैं। हिन्दूओं के ही सबसे अधिक त्योहार मनाये जाते हैं, कारण हिन्दू ऋषि-मुनियों के रूप में जीवन को सरस और सुन्दर बनाने की योजनाएँ रखी है। प्रत्येक पर्व-त्योहार, व्रत, उत्सव, मेले आदि का एक गुप्त महत्व हैं। प्रत्येक के साथ भारतीय संस्कृति जुडी हुई है। वे विशेष विचार अथवा उद्देश्य को समाने रखकर निश्चित किय गये हैं।मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठा के लिए मूल्यपरक शिक्षण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है। मूल्यपरक शिक्षा आज समय की मांग बन गई है। अतः इसे शीघ्रतिशीघ्र लागू करने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् को इसके स्वरूप एवं तदर्भ आवश्यक क्रियान्विति-योजना निर्धारित करने का कार्य सौंपा गया है। एतदर्थ पुरस्सृत निम्नांकित नीति निर्देश लक्ष्यनिष्ठ है। "सारभूत मूल्यों के गिरते हुए स्तर के प्रति बढ़ती हुई चिन्ता और समाज में बढ़ती हुई कटुता से यह जरूरी हो गया है। कि पाठ्यचर्या में पुनर्समायोजन लाया जाए ताकि शिक्षा को सामाजिक, नीतिपरक और नैतिक मूल्य पैदा करने के लिए एक सशक्त साधन बनाया जा सके। हमारे सांस्कृतिक और विराट समाज में शिक्षा के जरिये विकसित किये जाने वाले मूल्यों में सार्वभौमिक भावना होनी चाहिए और इनसे हमारे लोगों में एकता और एकीकरण की भावना विकसित होनी चाहिए। इस प्रकार की मूल्य शिक्षा रूढ़िवाद, धार्मिक कट्टरता, हिंसा, अन्धविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त करेगी। इस निर्णायक भूमिका के अतिरिक्त, मूल्य शिक्षा की एक गहन ओर ठोस विषयवस्तु हमारी विरासत, राष्ट्रीय और सार्वभौमिक उद्देश्य और विचारों पर आधारित है। इसमें इस पहलू पर मुख्य रूप से दिया जाना चाहिए।*

***संकेत कुँजी** – भारतीय हिन्दू संस्कृति के पर्व, त्योहार, कहानियों एवं शैक्षिक मूल्यों के विभिन्न पक्ष।*

---------------------------------X---------------------------------

भूमिका

भारतीय संस्कृति में व्रत, पर्व-त्योहार उत्सव, मेले आदि अपना विशेष महत्व रखते हैं। हिन्दूओं के ही सबसे अधिक त्योहार मनाये जाते हैं, कारण हिन्दू ऋषि-मुनियों के रूप में जीवन को सरस और सुन्दर बनाने की योजनाएँ रखी है। प्रत्येक पर्व-त्योहार, व्रत, उत्सव, मेले आदि का एक गुप्त महत्व हैं। प्रत्येक के साथ भारतीय संस्कृति जुडी हुई है। वे विशेष विचार अथवा उद्देश्य को समाने रखकर निश्चित किय गये हैं। प्रथम विचार तो ऋतुओं के परिवर्तन का है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति का साहचर्य अपना विशेष महत्व रखता है। प्रत्येक ऋतु-परिवर्तन अपने साथ विशेष निर्देश लाता है, खेती मे कुछ स्थान रखता हैं। कृषि प्रधान होने के कारण प्रत्येक ऋतु-परिवर्तन हँसी-खुशी मनोरंजन के साथ अपना-अपना उपयोग रखता है। इन्हीं अवसरों पर त्योहार का समावेश किया गया है, जो उचित है। ये त्योहार दो प्रकार के होते है और उद्देश्य की दृष्टि से इन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम श्रेणी में वे व्रत, उत्सव, पर्व-त्योहार और मेले है, जो सांस्कृतिक हैं और जिनका उद्देश्य भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों और विचारों की रक्षा करना है। इस वर्ग में हिन्दूओं के सभी बड़े-बड़े पर्व-त्योहार आ जाते है, जैसे - होलिका-उत्सव, दीपावली, बसन्त, श्रावणी, संक्रान्ति आदि। संस्कृति की रक्षा इनकी आत्मा है।

दूसरी श्रेणी में वे पर्व-त्योहार आते है, हिन्हें किसी महापुरूष की पुण्य स्मृति में बनाया गया है। जिस महापुरूष की स्मृति के ये सूचक है, उसके गुणों, लीलाओं, पावन चरित्र,

महानताओं को स्मरण रखने के लिए इनका विधान है। इस श्रेणी में रामनवमी, कृष्णाष्टमी, भीष्म-पंचमी, हनुमान-जयन्ती, नाग-पंचमी आदि त्योहार रखे जा सकते हैं।

दोनों वर्गों में मुख्य बात यह है कि लोग सांसरिकता में डूब गये या उनका जीवन नीरस, चिन्ताग्रस्त, भारस्वरूप न हो जाय, उन्हें ईश्वर की दिव्य शक्तियों और अतुल सामर्थ्य के विषय में चिन्तन मनन, स्वाध्याय के लिए पर्याप्त अवकाश मिले। पर्व-त्योहार के कारण सांसकरिक आध-व्याधि से पिसे हुए लोगों में नये प्रकार की उमंग और जागृति उत्पन्न हो जाती है। बहुत दिन पूर्व से ही पर्व-त्योहार मनाने में उत्साह और औत्सुक्य में आनन्द लेने लगते हैं। हमारा होलिका-उत्सव गेहूँ और चने की नई फसल का स्वागत, गर्मी के आगमन का सूचक, हँसी-खुशी और मनोरंजन का त्योहार है। ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, जाति-वर्ण का भेद-भाव भूलकर सब हिन्दू प्रसन्न मन से एक-दूसरे के गले मिलते और गुलाब, चन्दन, रोली, रंग, अबीर लगाते हैं। पाररस्परिक मन-मुटाव और वैमनस्य की पुण्य गंगा बहाई जाती है। यह वैदिक कालीन और अति प्राचीन त्योहार हैं। ऋतुराज बसन्त का उत्सव है। बसन्त पशु-पक्षी, कीट, पतंग, मानव सभी के लिए मादक मोहक ऋतु है। इसमें मनुष्य का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। होलिका दहन प्राचीन यज्ञ-व्यवस्था का ही बिगड़ा हुआ रूप है, जब सब नागरिक भेद-भाव छोड़कर छोटे-छोटे यज्ञों की योजना करते थे, मिल-जुल कर प्रेमपूर्वक बैठते थे, गायन-वादन करते और शिष्ट मनोरंजन से आनन्द मनाते थे। आजकल इस उत्सव में जो अपवित्रता आ गई है, उसे दूर करना चाहिए। अश्लीलता और अशिष्टता को दूर करना आवश्यक है।

दीपावली लक्ष्मी-पूजन का त्योहार है। गणेश चतुर्थी, संकट नाशक पर्व-त्योहार है। गणेश में राजनीति, वैदिक और पौराणिक महत्व भरा हुआ है। तत्कालीन राजनीति का परिचायक है। बसन्त पंचमी प्रकृति की शोभा का उत्सव है। ऋतुराज बसन्त के आगमन का स्वागत इसमें किया जाता है। प्रकृति का जो सौन्दर्य इस ऋतु में देखा जाता है, अन्य ऋतुओं में नही मिलता। इस दिन सरस्वती पूजन भी किया जाता है। प्रकृति की मादकता के कारण यह उत्सव प्रसन्नता का त्योहार है। इस प्रकार हमारे अन्य पर्व-त्योहार का भी सांस्कृतिक महत्व है। सामूहिक रूप से सब को मिलकर आनन्द मनाने, एकता के सूत्र में बाँधने का गुप्त रहस्य हमारे त्योहार और उत्सवों में छिपा हुआ है।

पर्व और त्योहार

यह विश्व-प्रकृति जिससे मानव तथा अन्य समस्त प्राणियों और भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति हुई है, एक विशेष नियम से बँधी है। उस नियम के अनुसार ही मानव-प्रकृति का भी विकास हुआ है। इस व्यापक नियम के नियन्त्रण में ही हम को दिखलाई पड़ने वाले इस जड़ चैतन्य संसार के सब कार्य चल रहे है। इन्हीं नियमों को, जिनके आधार पर यह विश्व-संसार टिका हुआ है, जान लेना और उनके अनुकुल व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की व्यवस्था करना यही भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सार है। यहाँ के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने समाज और व्यक्तियों के लिये जो आचरण और कर्तव्य नियत किये हैं, उन सब में इसी गहन तत्व को दृष्टिगोचर रखा गया है। वे जानते थे कि मनुष्य का समस्त जीवन इन्हीं नियमों की एक श्रृंखला के रूप में है, इसलिये उसका कोई भी कार्य इनके विपरीत नहीं होना चाहिए अन्यथा प्रकृति उसे अवश्य दण्ड देगी। इसलिये उन्होंने हमारे छोटे-बड़े सभी कर्तव्यों और प्रातःकाल से लेकर शयनकाल तक दैनिक कृत्यों को धर्म का रूप दे दिया, जिन पर आचरण करके ही हम सुख और शन्ति प्राप्त कर सकते है।

जिस प्रकार हिन्दू शास्त्रों में हमारे व्यक्तिगत कृत्यों को धर्म का रूप दिया गया है, उसी प्रकार सामाजिक कार्यों को भी धर्म का अंग बना दिया गया है, जिससे लोग उनके पालन में ढिलाई न करें और उनसे यथोचित प्रेरणा प्राप्त करते रहें। पर्व-त्योहार धार्मिक और सामाजिक उत्सव तथा व्रत आदि का विधान वैसे संसार की सभी जातियों और देशों में पाया जाता है। सभी मजहबों के संस्थापकों और आचार्यों ने कुछ ऐसे विशेष दिन नियत कर दिये है, जिन पर वे अपने विशेष मनोभावों को प्रकट करने के लिए कुछ विशेष कृत्य करते देखे जाते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि अपनी स्वाभाविक प्रवृति के अनुसार मनुष्य सदा एक ही रस में रहना पसन्द नहीं करता। अगर वह वर्ष के दिन नित्य प्रति के कार्यों और नियमित व्यवसाय या नौकरी आदि में ही लगा रहे तो उसके चित में अवश्य उद्विग्नता का भाव उत्पन्न हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि उसको बीच-बीच में कभी ऐसा अवसर मिलता रहे जिससे वह अपने जीवन में कुछ नवीनता तथा आमोद-प्रमोद का अनुभव कर सकें और विश्राम भी पा सके। अन्य समस्त जातियों के पर्व-त्योहार की भाँति उपर्युक्त सब उद्देश्य हिन्दू-जाति के पर्व-त्योहार में भी पाये जाते है। पर हमारे यहाँ इतनी विशेषता और है कि पर्व-त्योहार को केवल छुट्टी का अथवा धर्माचार्यों की जयन्ती आदि का दिन ही ना समझकर उससे मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति और सामाजिक विकास का भी उद्देश्य सिद्ध किया है।

सच पूछा जाये जो हिन्दू-जाति अपनी प्राचीन सभ्यता और आचार-विचार को इतनी शताब्दियों के परिवर्तन के बाद भी जो अभी तक कायम रख सकी है, इसका बहुत कुछ श्रेय इन पर्व-त्योहार और उत्सवों को ही है। साधारण जनता धर्म के गंभीर उपदेशों को नहीं समझ सकती है। उसको शिक्षा देने और सुमार्ग पर चलाने का एकमात्र मार्ग धार्मिक कथा-कहानी श्रवण कराना और मनोरंजन के साथ धार्मिक कृत्यों के करने की विधि बतलाना ही है। यह उद्देश्य त्योहार और व्रतोत्सव आदि से ही सुगमतापूर्वक सिद्ध हो सकता है। पर्व-त्योहार की स्थापना मुख्यतः निम्नलिखित उद्देश्यों को लेकर की गई है -

1. जनता जागृति, सदभावना, ऐक्य, संगठन की वृद्धि करना, लोगों को सुसंस्कृत, शिष्ट और सुयोग्य नागरिक बनाना, उनमें सच्ची सामाजिकता की भावना उत्पन्न करना।

2. किसी विशेष अवसर पर बड़े यज्ञ के लिये। यद्‌यपि शस्त्रों के मतानुसार यज्ञ शब्द का अर्थ परोपकार के कार्यों के लिये होता है तथापि भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व वैदिककालीन पर्वों में यज्ञ का अर्थ बड़े हवन से ही लिया जाता है।

3. किसी विशेष ऋतु के परिवर्तन या फसल के तैयार होने पर सामाजिक समारोह के रूप में।

4. सर्व साधारण के मनोरंजन और हृदयोल्लास-प्रकाश के लिये।

5. किसी युग-प्रवर्तक महापुरूष, अद्वितीय कर्मवीर, शूरवीर, प्रणवीर, दानवीर, महान विद्वान, आदर्श प्रतापी की अथवा किसी महान् राष्ट्रीय घटना की स्मृति मनाने के निमित्त।

हमारे तत्ववेत्ता, पूज्यपाद ऋषि-महर्षियों के ऊपर बतलाये पाँचों उद्देश्यों के अनुकुल अनेक त्योहार और पर्व के दिवस नियत कर दिये है और उन सब में लौकिक कार्यों के साथ ही धार्मिक तत्वों का ऐसा समावेश कर दिया है कि उनसे हम को अपने जीवन-निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है और समाज भी सुमार्ग पर अग्रसर हो सकता है। मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरणशील प्राणी है। दूसरों को कोई शुभ काम करता देख कर उसके मन में भी वैसा ही काम करने की इच्छा स्वतः उत्पन्न होती है। फिर यदि उस कार्य के करने वाले उसके कुटुम्बीजन अथवा पूर्वज हों तो उस कार्य में उसका अनुराग और भी बढ़ जाता है। यही कारण है कि प्राचीन काल में जिनके कुलों में उत्तम और सत्कर्म होते चले आये थे, उनकी सन्तान भी प्रायः सन्मार्गगामी होती थी। इसके विरूद्ध जिनके पूर्व पुरूष बहुत समय से जघन्य आचार वाले अथवा निन्दनीय कृति वाले रहे हों, उनकी संतान का सुधार बड़ी कठिनता से होता था, क्योंकि बालक अधिकांश में अपने बड़ों से ही आचरण सीखते हैं, और उसी साँचे में ढलते हैं, जिसमें उनके पूर्वज ढले होते है।

जो बात एक व्यक्ति के सम्बन्ध में कही गई है, वही समाज के सम्बन्ध में सत्य है, क्योंकि समाज या जाति व्यक्तियों के समूह का ही नाम है। जिस समाज या जिस जाति में अधिक संख्या जैसे भले या बुरे, उन्नतशील अथवा अवनतशील लोगों की होगी, वैसी ही वह जाति बन जायेगी। इसीलिये सभ्य जातियाँ अपने महान् कार्य करने वाले पूर्व पुरूषों, महात्माओं, प्रतापवान व्यक्तियों की स्मृति को सुरक्षित बनाये रखने के लिये प्राणपत्र से यत्न करती है, जिससे आगामी पीढियों को उनका श्रेष्ठ आदर्श प्रेरणा देता रहे। सोभाग्य से हमारा भारतवर्ष भी इस विषय में किसी जाति से पीछे नहीं है। एक प्रकार से तो हम किसी जाति से पीछे नहीं है। एक प्रकार से तो हम कह सकते है कि हिन्दूओं के बराबर त्योहार और पर्व-दिवस संसार की किसी भी जाति में प्रचलित नहीं है। यदि यहाँ के सब त्योहार, पर्वो तथा व्रतोत्सव आदि की गणना की जाय तो उनकी संख्या इतनी अधिक है कि 1 वर्ष के 365 दिन में से एक भी दिन ऐसा नहीं मिल सकता जो किसी न किसी दृष्टि से पवित्र पर्व और विशेष धार्मिक कृत्य से शून्य हो। इसी से कहावत प्रचलित हो गई कि सात वार और नौ त्योहार।

यों तो समाज में आज ऐसे भी सज्जन मौजूद है जो पण्डित और ज्ञानी होने को दावा करते हुए तरह-तरह की दलीलें देकर दन पर्वों के साथ सम्मिलित कुरीतियों का समर्थन करते है, पर हम पर्व-त्योहार के नाम पर या प्राचीन रूढियों के बहाने किसी ऐसी बात को स्वीकार नहीं कर सकते जिनसे अधिकांश मनुष्यों की प्रकृति प्रायः अधोगामिनी होती है और उसे जरा भी सहारा या बहाना मिल जाय तो फौरन दुर्व्यसनों की तरफ प्रेरित होती है। यही कारण है कि मनुष्यों को सदैव सन्मार्ग, पुण्य कार्यों का ही उपदेश दिया जाता है। हानिकारक कार्यों, दुर्व्यनों अथवा गन्दे आमोद-प्रामोद के लिए किसी को उपदेश देने की जरूरत नहीं होती, इनके सिखने वाले गुरू लोग जो सब जगह बिना कोशिश किये स्वंय ही मिल जाते है। इसलिए कोई पर्व-त्योहार किसी भी उद्देश्य की सिद्धि के लिए क्यों न स्थापित किया गया हो, अगर उसमें कुछ हानिकारक बातों का समावेश हो गया है तो उनका त्याग अवश्य करना चाहिए। ये बातें व्यक्तिगत रूप से तो किसी प्रकार सहन करनी भी पड़ती है, पर इनको

सामाजिक रूप दे देना महापाप समझना चाहिए, क्योकि फिर तो उसका प्रभाव भले-बुरे सभी श्रेणियों के लोगों पर पड़ता है।पर्व-त्योहार और धार्मिक उत्सवों जाति के लिए नव-जीवन प्रदान करने वाले और स्फूर्ति प्रदायक होते है, इसलिए उनका प्रचार बढाना और उनको उत्साह से मनाना तो सभी समाज-हितैषियों का परम कत्र्तव्य है, पर साथ ही यह ध्यान रखना भी परमावश्यक है कि हम उनके वास्तविक उद्देश्य और स्वरूप को न भूले। समय के प्रभाव से व्यक्ति और वस्तुओं की तरह संस्थाएँ और प्रथाएँ भी जीर्ण पड़ जाती है और उनमें अनेक प्रकार की कमजोरियाँ, दूषण प्रवेश कर जाते हैं। समझदार समाज-नेताओं की कर्तव्य है कि इस तरह ध्यान देते रहें और जिस प्रकार हम प्रतिवर्ष अपन गृहों, वस्तुओं की सफाई, मरम्मत आदि कराते रहते हैं, उसी प्रकार सामाजिक प्रथाओं में भी समयानुकुल संशोधन और परिवर्तन करते रहें। प्रत्येक सामाजिक प्रथा, त्योहार या उत्सव आदि को अटल-अचल समझ लेना मूर्खता का लक्षण है। हमें इस सम्बन्ध में सबसे पहले यह सूत्र याद कर लेना चाहिए कि तमाम प्रथायें मनुष्यों के लिये बनाई गई है, न कि मनुष्य इन प्रथाओं के लिए। जो व्यक्ति ऐसा समझते हैं या ऐसा कहते हैं कि ये तमाम पर्व-त्योहार और उनकी पद्धतियाँ सदा से ऐसी ही चली आई है कि सदा ऐसी ही रहनी चाहिए, वे विचारशील कदापि नही हो सकते, बुरा न माना जाय तो उनको कूप-मंडूक भी कहा जा सकता है। त्योहार और समाजिक उत्सव सदैव कुछ न कुछ बदलते रहते हैं और उनके करने की विधियाँ तो आज भी हर प्रदेश में कुछ न कुछ भिन्न है। हजार दो हजार वर्ष की बात तो छोड़ दीजियें, अब से पाँच-सात सौ वर्ष पहले के साहित्य और ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी भली प्रकार खोज कीजिये तो आपको मालूम पड़ेगा कि उस समय मनाये जाने वाले अनेक त्योहार आज समाप्त हो गये हैं और कितने ही नये प्रचलित हो गये हैं। इतनी दूर भी जाने की जरूरत नहीं, हम अपनी आयु के भीतर ही विचार करके देखें और पता लगावें तो कितने ही त्योहार और उत्सव जो हमारी बाल्यावस्था में धूमधाम से मनाये जाते थे, आज बिल्कुल खत्म हो गये हैं या कम पड़ गये हैं। पर खेद है कि जो लोग विचारशाीलता से कोई नाता ही नहीं रखते, खोज करना किस चिडिया का नाम है, यह जानते ही नहीं और जिनकी निगाह अपनी गली से बाहर भी नहीं जाती, वे किसी भी प्रथा के लिए लाखों और करोड़ों वर्ष से कम की बात ही नहीं कहते। ऐसे लोग समाज को पीछे की तरफ धकेलने वाले होते हैं।

पर्व-त्योहार और सार्वजनिक उत्सवों की विवेचना में हमारा लक्ष्य यही है कि अपने पूर्व पुरूषों के अनुकरणीय और उज्ज्वल सत्कार्यों की स्मृति को कायम रखतें हुए, हम उनको इस प्रकार मनावें जिससे वे हमारे लिए ही नहीं, मनुष्यमात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हों। हमें सदैव उनसे कोई सत्शिक्षा, सत्प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। हमें उनकों ऐसे समयानुकुल ढंग से मानना चाहिए जिससे वे हमारी किसी आवश्यकता की पूर्ति करें और त्रुटियों को दूर करें।

एक आवश्यक बात यह है कि त्योहार की संख्या बहुत बड़ी होना कोई प्रशंसा की बात नहीं है। इस स्थिति का नतीजा यह होता है कि पर्व-त्योहार का महत्व और विशेषता अनेक अंगों में खत्म हो जाती है और लोग उनको भार स्वरूप समझने लगते है। जैसा हम आरम्भ में कह चुके है, पर्व-त्योहार का एक बहुत बड़ा उद्देश्य यह है कि मनुष्य बहुत समय तक एक सा काम करते हुए और एक रस जीवन व्यतीत करते हुए जब ऊब जाता है तो उसकी तबियत को बदलने के लिए थकावट को दूर करके विश्राम पाने के लिए उसके सामने कोई नवीन कार्यक्रम कोई नवीन आकर्षण उपस्थित किया जाय। यह उद्देश्य तभी सिद्ध हो सकता है जबकि त्योहार का अवसर उचित समय और फासले से आये। अगर हम हर रोज ही त्योहार और व्रतोत्सव मनाते रहें तो उनकी विशेषता अनेक अंगों में खत्म हो जाती है और लोग उनको भार स्वरूप समझने लगते हैं, उनकी विशेषताएँ कैसे टिक सकती है? फिर तो वे लोगों को समय और धन खर्च कराने वाले एक बोझ की तरह जान पड़ेंगे। इसलिए आवश्यकता है कि हम चाहे दस या बीस ही पर्व-त्योहार मनायें पर उनको पूरे उत्साह और व्यवस्था के साथ मनायें। तभी उनके मानने का उद्देश्य पूरा हो सकता है और हमारी दृष्टि में उनकी श्रद्धा और प्रतिष्ठा कायम रह सकती है।

हर व्यक्ति का इस सन्दर्भ में लक्ष्य यही होना चाहिए कि वह प्रत्येक पर्व-त्योहार के वास्तविक रूप को समझकर उसे ऐसे तरीके से मनावे जो समाज के लिये हितकारी सिद्ध हो। उसको यह समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार हिन्दूशास्त्रों में बतलाये षोडश या द्वारश संस्कार मनुष्य के व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण करकें उसकी उन्नति में सहायक होते है, उसी प्रकार ये पर्व-त्योहार और पर्वोत्सव आदि सामाजिक विकास और उसके संगठन को सुदृढ करने वाले संस्कार हैं। इनका उद्देश्य सदैव समाज का हित होना चाहिए और जो कोई बात इसके विपरीत जान पड़े उसका धर्म के वास्तविक तत्वों को दृष्टिगोचर रखते हुए संशोधन करना चाहिए।प्रत्येक पर्व-त्योहार के अवसर पर यज्ञ (हवन), अध्ययन (शास्त्रों का पठन-पाठन) और दान (सत्पुरूषों और लाभकारी संस्थाओं की सहायता) तो हमारा कर्तव्य ही है। इनके सिवाय जो लौकिक या आमोद-प्रमोद की विधियाँ हैं, वे सभी स्थानों में कुछ-न-कुछ भिन्न हुआ करती है। इसलिए उनको अपने स्थान की प्रथा के अनुसार सुरूचिपूर्ण ढग से मनाने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। हाँ, जैसा हम ऊपर बतला चुके है कि उन सब में समाज हित के मूल सिद्धान्त का ध्यान अवश्य

www.ignited.in

रखा जाय, उसके विपरीत कोई कार्य न किया जाय और जहाँ ऐसी कोई बात दिखलाई पड़े उसका समझदारी और प्रेमपूर्वक संशोधन कर दिया जाय।

पर्व-त्योहारो की कहानियों में निहित शैक्षिक मूल्यों के विभिन्न पक्ष

धार्मिक पक्ष:- लोकमान्य तिलक ने कहा है – "काल की मर्यादा केवल वर्तमान काल के ही लिये नहीं होती। ज्यों-ज्यों समय बदलता जाता है त्यों-त्यों व्यावहारिक धर्म में परिवर्तन होता जाता है। इसलिए जब प्राचीन समय की किसी बात की योग्यता या अयोग्यता का वर्णन करना हो, तब उस समय के धर्म-अधर्म सम्बन्धी विष्वास का भी अवश्य विचार करना पड़ता है।" लोकमान्य का यह मत अभिन्नदयीय है।

धर्म शब्द 'धृ' (धारण करना) धातु से बना है। धर्म से ही सब प्रजा बंधी हुई है। यह निश्चित है कि जिसे सह प्रजा धारण करती है, वही धर्म है:-

धारणाद्धर्म मित्याहुः धर्मो धारयेत प्रजाः।

यत्स्याब्दारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।

हिन्दू धर्म एक ऐसा धर्म है, जिसने अन्य धर्मो को बिना किसी हथधर्मिता न केवल देखा बल्कि उनके भटकावों और उपधार्मिक विचारों तक को स्वयं अपने आंचल में स्थान दिया। आज भी अगर हम हिन्दू संस्कृति के त्योहार के पीछे जो कहानियां है, अगर उन पर दृष्टिपात करे तो निश्चित रूप से पायेंगे ये सारी कहानियां धर्म सम्बन्धी शिक्षाओं से भरी हुई है।

मोक्ष:- भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरूषार्थो पर विशेष बल दिया गया है। मोक्ष को मनुष्य जीवन का अंतिम व सबसे श्रेष्ठ ध्येय माना गया है। मोक्ष से सम्बन्धित प्रसंग भी हिन्दू संस्कृति के त्योहार की कहानियों में अनेक जगह मिलते हैं 'महाशिवरात्रि' त्योहार को मनाने के पीछे जो कहानी निहित है वह भी मोक्ष से ही जुड़ी हुई है, जिसकी पुष्टि यह प्रसंग कर देता है - एक समय पार्वती जी शिवजी के साथ के कैलाश पर बैठी थी। उसी समय पार्वती जी ने भगवान शंकर से प्रश्न किया कि – "इस तरह का कोई व्रत है जिसके करने से मनुष्य आपके धाम को प्राप्त कर सकें?" तब भगवान शंकर ने इस प्रश्न के उत्तर में महाशिवरात्रि का व्रत बताया जिसने बहेलिया के चित को निर्मल करने के साथ ही उसे शिवधाम पहुंचाया। विद्येश्वर संहिता में शिव ने स्वयं कहा है कि इस दिन जो प्राणी निराहार और जितेन्द्रिय होकर उपवास रखता है। वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होकर शिवमय ही हो जाता है।

कोटिरूद्र संहिता में वर्णित तथ्यों के अनुसार सर्वबाधा निवारण, नेत्र रोग, मानसिक रोग, हनदय रोग के लिए महाशिवरात्रि के दिन रूद्राष्टाध्यायी के 8 वे अध्याय के निम्न मंत्र से हवन करने पर या बिल्व पत्र या दुग्धाभिषेक करने से बहुत लाभ मिलता है। ऐसी धार्मिक मन्यता है:-

देवदेव महादेव नीलकंठ नमोस्तुते।

कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रि व्रतं तव।।

तव प्रभावत् देवेश निर्विध्नेन भेवदिति।

कामाद्याः शत्रवों मां वै पीडांकुर्वन्तु नैव हि।।

सामाजिक पक्ष:- अपने सामाजिक पक्ष के दायरे में भी भारतीय संस्कृति वैज्ञानिक आधारों पर खड़ी हुई है। भारतीय तत्व ज्ञानियों ने सामाजिक क्षेत्र में बहुत खोज बीनकर ऐसे नियमों को प्रतिपादित व निर्धारित कये थे जो प्रचूर फल देने वाले हैं और आज की जिनसे समग्र मानव जाति लाभ उठा रही है। हमारे शास्त्रों में आचार को परम धर्म कहा गया है। भारतीय तत्ववेत्ता यह मानते हैं कि जो सिद्धान्त अथवा विचार मानव आचरण में नही आ सकते, वे उपयोगी नहीं है और जो धर्म व्यवहार में नहीं आता जिससे हमारा देनिक जीवन और समस्याएं हल नहीं होती, जीवन में सुख शांतिमय नहीं बनता, हम उसे धर्म नहीं कह सकते। हमारी संस्कृति के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है, जिनसे हमारा नैतिक और आध्यात्मिकही नहीं अपितु सामाजिक जीवन भी उन्नत बनता है। वर्तमान युग संक्रांति और संघर्ष का युग है। यदि हम भारतीय आचार परम्परा को बचाना चाहते हैं, तो हमें अपनी संस्कृति में घुसे हुए दोषो का निवारण कर पूरी श्रद्धा से पूर्वजों द्वारा सौंपी गई धरोहर को ग्रहण कर अपने व्यक्तित्व में समाहित करना होगा।

यह अलग बात है कि भारतीय संस्कृति के उत्थान को वाम-मार्ग से कड़ा मुकाबला करना पड़ा है। आर्य संस्कृति के संरक्षक और समर्थकों ने अपने उज्जवल चरित्र और आचरण के बल पर इन कुप्रभावों को रोकने का सकारात्मक प्रयास किया और आगे बढ़ता चला गया। किन्तु आज पुनः वही विचारधारा नूतन रुप में पाश्चात्य संस्कृति की वेश-भूषा में हमारे सामने खड़ी है। भौतिकवाद और वाम-मार्ग के प्रचारक खुले आम भारतीय संस्कृति के आचार-विचार का

विरोध कर रहे हैं लेकिन हमारा विष्वास है कि भारतीय संस्कृति के पुष्ट सामाजिक पक्ष के सम्मुख इस भौतिकवाद की बालू की दीवार न ठहर सकेगी। क्योंकि भारतीय संस्कृति का सामाजिक पक्ष अपने आधार शिला सामाजिक समदाचार पर ही आसीन है। इसलिए उसका धर्म बतलाते हुए प्रथम सूत्र 'आचार प्रथमो धर्मः' कहा गया है और भारतीय लोगों ने इसी को अपने व्यक्तित्व और आचरण में उतारने का काम किया है। प्राचीन हिन्दू संस्कृति सामाजिक एवं प्रबुद्ध थी। उसके सदस्य अपने उत्तरदायित्व एवं कत्र्तव्य के प्रति पूर्ण सजक थे। हिन्दू संस्कृति को अपने विकास के क्रम में इसकी प्रतीति हो चुकी थी कि व्यक्ति और समाज एक-दूसरे को प्रभावित करते है तथा दो के बीच सामन्जस्य द्वारा भविष्य का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

हिन्दू संस्कृति आर्य जीवन में सम्पादित उन सभी श्रेयात्मक कृतियों का प्रतिनिधत्व करती है, जो आर्य जाति की प्राणदायिनी बनकर उसे चिर जीवन प्रदान करने में समर्थ सिद्ध हुई है। हिन्दू संस्कृति प्राचीन आर्यो में सामाजिक आचारण में रूपायित हुई है तथा आज भी वह सामान्य भारतीय जन-जीवन में अंकित है। भारत के राष्ट्रीय जीवन में दो मर्यादाऐं प्रतिष्ठित हुई है, वे सभी आर्य संस्कृति की विशेषताएं है। मानव कल्याण हिन्दू संस्कृति का प्रधान ध्येय है। त्योहार के पीछे जो कथाएं है वे हमारे मन की गहराईयों में प्रवेश कर हमारी संवेदनाओं को छूकर उन्हें जगाती है और बाहर आने को प्रेरित करती है। इसी के साथ में हमे सामाजिक सन्दर्भो से जोड़ती है, क्योंकि ये स्वयं उन संदर्भो से उपजी और जुड़ी हुई है।

यह सच है कि कौन समाज कितना स्वस्थ है, इसकी माप इसी से की जाती है कि उसमें कितने लोग निःस्वार्थ जीवन जीते हैं और लोक को जीवन के लिए स्वस्थ दृष्टि प्रदान करते हैं।

नारी की महत्ता:- नवरात्र के समय अष्टमी या नवमी को कन्या पूजन, उनका पद-प्रक्षालन व उन्हें भोजन कराने के पश्चात् दक्षिणा देने का विधान है। कन्याओं का वस्तुत माँ का बालरूप मानकर उनकी पूजा की जाती है अतः सामाजिक रूप से बालिकाओं को इस प्रकार विशेष महत्त्व प्रदान करता है। इससे पता चलता है कि हिन्दू संस्कृति में प्राचीन काल में भी स्त्री को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था।

पवित्र स्नेह एवं रिश्तों की प्रगाढ़ता:- भाई दूज के दिन बहिने अपने भाई के तिलक लगाकर उसकी दीर्घ आयु व सुख शान्ति के लिए पूजा करती है तथा रक्षा-बन्धन पर भी बहिन अपने भाई के रक्षा सूत्र बांधती है, बदले में भाई उसकी रक्षा का वचन देता है। यह त्योहार भाई-बहिन के पवित्र स्नेह के प्रतीक हैं, जो सामाजिक नींव को सुदृढ़ करते हैं।

इस पर्व की पूर्वजों ने इसलिए व्यवस्था की थी कि इस बहाने अपने व्यस्त क्षणों में से समय निकालकर लोग अपनी बहिन-बेटियों के यहां जा सके और उन्हें अपने घर बुलाये। यह पर्व आज के मषीन युग में और भी सार्थक हो उठा है। रक्षाबंधन भाई के द्वारा बहिन की रक्षा का वचन है पर भैया दूज बहिन का भाई को दिया हुआ रक्षा कवच है।

सौभाग्य के सूचक:- भारत में सुहाग के कई पर्व मनाये जाते है। जैसे-करवा चौथ, गणगौर आदि इसी प्रकार बसंत पंचमी को भी सुहाग लेने की प्रथा है। इस दिन धोबन अपनी माँग से पांच या सात बार सिन्दूर निकालकर सुहागिनों की माँग भरती थी। अतः ये पर्व गृहस्थ जीवन की पवित्रता के प्रतीक है। नारी के चार रूप है - पुत्री, बहिन, पत्नी व माता। अतः इन चारों रूपों के कत्र्तव्य और दायित्वों की जांच के लिए ही समस्त पर्व आते हैं जिन्हें आज की नारी भूलती जा रही है। इसे एक ढोंग मानकर इन पर्वो को छोड़ती जा रही है। पर ये पर्व हमें कुछ याद दिलाने आते हैं।

वैज्ञानिक पक्ष:- भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता यही है कि - इसमें धर्म, दर्शन और सांसारिक व्यवहार में स्वाभाविक रूप में समन्वय को प्रतिष्ठित किया गया है। हिन्दू धर्म साधना की यह एक विशेषता ही कही जायेगी कि इसके सभी नैष्ठिक क्रियाकलाप जागतिक आचरण की दृष्टि से विज्ञान सम्मत है। नवरात्रों की संकल्पना का आधार भी पूर्ण वैज्ञानिक है।

नवरात्र:- यह एक स्वयंसिद्ध तथ्य है कि भारत के सभी बड़े पर्व ऋतुपरिवर्तन के समय ही मनाये जाते हैं। ऋतु परिवतर्न व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को अवश्यमेव प्रभावित करता है। इसको भारतीय भेषाचार्यो के अनुसार उचित आहार-विचार से नियन्त्रित किया जा सकता है। शारदीय नवरात्र वर्षाकाल की समाप्ति पर सम्पन्न होता है। चैत्र मास में भी सर्दी-गर्मी मध्य परिवर्तन का समय रहता है। अतः नौ दिनों तक निराहार अथवा फलाहार कर साधना करने पर पाचनतंत्र की आन्तरिक स्वच्छता स्वतः हो जाती है।

चैत्र से शारदीय नवरात्रा का अपेक्षाकृत अधिक प्रचार एवं महत्व माना जाता है। मंत्र जाप,यज्ञ आदि से व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास होता है और पर्यावरण को भी यज्ञ-हवनों की धर्म के द्वारा आवश्यक उष्मा प्राप्त होती है। वर्षाकाल की समाप्ति पर वायुमण्डल में उदित असंख्य कीटाणुओं का नाश यज्ञ-धूम से स्वतः ही हो जाता है। देवी की आराधना में एक ही मंत्र की पुनरावृत्ति से व्यक्ति के चहुं और जो वर्तुल बनता है वह उसके स्नायुयंत्र और मस्तिष्क को भी

पूर्णतः प्रभावित करता है। एक ही शब्द की पुनरावृत्ति से आराधक के अन्दर आणविक ऊर्जा का संचार कर उसके स्वास्थ्य की रक्षा करती है। उसका श्वास प्रक्रिया पर भी प्रभाव पड़ता है। इस आन्तरिक ऊर्जा के संचरण संयम से आराधक में आन्तरिक शक्ति व आत्म विष्वास का विकास होने की पूर्ण सम्भावना रहती है।

नवरात्र को शक्तिपर्व भी कहते हैं क्योंकि इन नौ दिन आराधक संकल्प सहित आराधना में रत रह कर आत्मानुशासन से आन्तरिक शक्ति संचय करता है।

गणेश चतुर्थी:- भगवान शिव द्वारा गणेश जी के हाथी का मस्तक काट कर जोड़ने के कथानक के घटनाक्रम से अनायास ही प्राचीन भारत की वैज्ञानिक प्रगति पर भी प्रकाश पड़ता है - कृत्रिम पुतले में प्राण संचालन, एक प्राणी के अंग का अन्य प्राणी के शरीर में प्रत्यारोपण के घटनाक्रमों से तत्कालीन आयुर्विज्ञान व शल्य क्रिया विज्ञान की क्षमता के विषय में भी ज्ञान प्राप्त होता है।

करवा चौथ तथा गणगौर इन त्योहार पर स्त्रियाँ अपने सौभाग्य की वृद्वि के लिए उपवास करती है। उपवास करने का वैज्ञानिक कारण भी है। उपवास करने से शरीर स्वस्थ, आत्म शुद्ध, चित्त निर्मल तथा हनदय कोमल हो जाता है।

रक्षाबन्धन:- यह पर्व सुधा से युक्त पूर्ण चन्द्र के प्रकाश में उपस्थित रहने पर होता है। इसलिए यह आयु और स्वास्थ्य देने वाला है।

दीपावली:- दीपावली मनाने का वैज्ञानिक कारण यह है कि पावस ऋतु में वर्षा के कारण सर्वत्र गन्दगी का राज्य हो जाता है। आन्तरिक तथा आभ्यन्तरिक, दोनों ही प्रकार की अशुद्धता होती है। दीपावली के समय तक वर्षा प्रायः समाप्त हो जाती है। अतः उस समय सफाई का उपयुक्त अवसर मिल जाता है। इसलिए वर्षा के उपरांत घरों को स्वच्छ करके उसे सुन्दर और आकर्षक बना देते हैं। कीट-पतंगे भी लिपाई-पुताई से दूर हो जाते हैं।

इसका आयुर्वेदिक कारण यह है कि दीपावली शरद-ऋतु में मनाई जाती है। शरद ऋतु वह मिलन संधि की वेला है जब दो भिन्न ऋतुऐं परस्पर मिलती है। वर्षा-ऋतु में जलवायु दूषित हो जाती है और विभिन्न विकार पैदा हो जाते हैं। इस समय रक्त सम्बन्धी अनेकानेक व्याधियां उत्पन्न हो जाती है। स्वास्थ्य में भी परिवर्तन होते हैं अतः इस काल में शरीर में ग्रीष्मकालीन रक्त प्रसारण और शरदकालीन रक्त संकोचन में आन्तरिक संघर्ष होता है। प्रत्येक व्यक्ति यह चेष्टा करता है कि इस संघर्ष में वह विजयी हो जिससे आगामी वर्ष पूर्ण स्वस्थ रहकर व्यतीत कर सके। वेदों में शरत्काल का विशेष उल्लेख किया गया है और मंत्रों में भी "जीवमेव शब्दः शतम्" कहा गया है। दीपावली इसका सबसे शुभ और उपयुक्त अवसर माना जाता है। इसलिए दीपावली शरद्-ऋतु में ही मनाई जाती है।

धनतेरस:- लक्ष्मीपूजा से दो दिन पूर्व कार्मिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन धनतेरस पर्व मनाते हैं - आयुर्वेद जगत् में इस दिन का विशेष महत्व है क्योंकि ऐसी मान्यता है कि इस दिन धन्वंतरी अमृतकलाश के साथ अवतरित हुए थे।

होली:- इस पर्व का वैज्ञानिक महत्त्व भी है। चन्द्रमा को सोमरस का दाता कहा गया है। फाल्गुन पूर्णिमा को वह कफ के उद्रेक में सहायक होता है। चन्द्रमा की कला के क्षीण होने के साथ कफ का उद्रेक कम होता जाता है। इसलिए होली पूर्णिमा की रात में भद्रा बीतने पर जलायी जाती है, जब पूर्णिमा का चन्द्रमा आकाश में रमता है। होलिका प्रज्वलित करने से वायुमण्डल के रोगाणु नष्ट होते हैं। इस पर्व में मुक्त होकर हंसना, बोलना तथा सारी वर्जनाओं से मुक्त होकर व्यवहार करना भी स्वास्थ्यवर्धक और स्नायुओं को सहज करने वाला है।

अक्षय तृतीया:- अक्षय तृतीया पर जप, तप, उपवास तथा हवन करने को विशेष महत्व दिया गया है ऐसा करने पर अक्षय फल की प्राप्ति होती है ऐसा पुराणों एवं महाभारत में कहा गया है। इसके पीछे धार्मिक मान्यता के साथ-साथ वैज्ञानिक कारण भी है। ये हैं - उपवास करने से शरीर स्वस्थ रहता है अतः सप्ताह में कम से कम एक दिन उपवास करना चाहिए। दूसरा हवन करने से पर्यावरण की शुद्धि होती है। विभिन्न समिधाओं एवं घी के मिश्रण से जो अग्नि जलती है उससे उठने वाली स्वच्छ एवं शुद्ध धुंआ पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखने में बहुत सहायक होती है।

गृहस्थ धर्म पक्ष:- हिन्दू संस्कृति में पति-पत्नी के रिष्ते को अटूट माना गया है। यही कारण है कि हिन्दू संस्कृति में पति-पत्नी के विवाह विच्छेद के लिए कोई शब्द नहीं है। विवाह के बाद पति ही एक पतिवर्ता पत्नी के लिए सर्वोपरी है। पत्नी अपने पति की अनुगमिनी एवं सहधमर्णी मानी जाती है। हिन्दू संस्कृति के अनेक त्योहार ऐसे हैं जिसमें एक पत्नी दिनभर व्रत रखकर अपने पति की दीर्घायु की कामना करती है यथा - करवाचौथ तीज एवं गणगौर, ये ऐसे त्योहार है जिसमें स्त्रियां अपने सौभाग्य की रक्षा के लिए उपवास करने के साथ-साथ पूजा भी करती है।

दानशीलता:- हिन्दू संस्कृति में दान की विशेष महत्ता रही है। हिन्दू संस्कृति में ऐसी मान्यता है कि किसी को अपने घर से खाली हाथ नहीं लौटाना चाहिए। दान भी योग्य व्यक्ति को ही अर्थात् जिसे उसकी आवश्यकता ही उसे ही देना चाहिए तभी वह श्रेष्ठ दान कहा जायेगा। मकर संक्रान्ति के पर्व पर भी दान की विशेष महत्ता है इस दिन सफेद तिल, काले तिल, आटे का गुड़ दिन सफेद तिल, काले तिल, आटे का गुड़ और दाने के लड्डुओं का दान किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन काले तिल में दक्षिणा डालकर ब्राह्मण को दान कर मेंहदी मंडानी चाहिए। कजरी तीज पर गऊ दान का विशेष महत्व है। हिन्दू संस्कृति में गाय को मातृस्वरूप में माना जाता है तथा उसकी पूजा की जाती है। अक्षय तृतीया को भी दिया हुआ दान आक्षय हो जाता है ऐसा मत्स्य पुराण कहता है।

पाप से मुक्ति:- 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में रक्षाबंधन का विधान इस प्रकार बताया गया है – "श्रावण पूर्णिमा को सूर्योदय से पूर्व उठकर देवों ऋषियों एवं पितरों का तर्पण करने के उपरांत अक्षत, तिल, धागो से युक्त रक्षा बनाकर धारण करना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है कि विधिवत् राखी बांधने से और बंधवाने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। लोक मान्यता है कि श्रावण पूर्णमासी में राखी बांधने से बुरे ग्रहों का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

श्रद्धा विश्वास:- धर्म ने श्रद्धा और विश्वास की तुष्टि-पुष्टि की है। श्रद्धा का नाम आत्मबल है जो विश्वास के विकास के साथ जहां एक और ईश्वर की परिकल्पना का विकास हुआ है, वही ये दोनों तत्व मानव सम्बन्धों के आधार बन गये हैं। हिन्दू संस्कृति में ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा एवं विश्वास व्यक्त किया गया है। करवा चौथ, तीज, गणगौर आदि त्योहार इस बात की पूर्णतया पुष्टि करते हैं। इन त्योहार पर स्त्रियां अपने पति की लम्बी उम्र व रक्षा के लिए ईश्वर की पूर्ण श्रद्धा व विश्वास के साथ ईश्वर की पूजा व उपवास रखती है।

जप, तप तथा हवन की महत्ता

हिन्दू संस्कृति में जप, तप तथा हवन करने को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। महाभारत व पुराण में उल्लेख है कि अक्षय तृतीया को किये गये स्नान, जप, तप तथा हवन आदि कर्मो का शुभ और अनंत फल मिलता है। पुराणों में उल्लेख है कि इस दिन उपवास करने एवं अक्षत-चावल से वासुदेव की पूजा करने तथा उसी से हवन करने पर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इस दिन जप, या वेदाध्ययन करने से वह फल रूप में 'अक्षय' हो जाता है।

सांस्कृतिक पक्ष:- भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक पक्ष कितने वैज्ञानिक आधारों पर, खड़ी है और कितनी उपयोगी जीवन विद्या का प्रतिपादन करती है, यह स्पष्ट हो चुका है । मानव को सच्चे अर्थो में मानव बनाने की दिशा में यही हमें अग्रसर करती है। इससे जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों का सुसंचालन व अनुगमन होता है। मुनष्य की अन्तात्मा को सही मार्ग पर आरुढ़ कराने की शक्ति इसी पद्धति में सन्निहित है। मनुष्य की पशुता का शमन करके उसे देवत्व की और अग्रसर करने का मार्ग यही पद्धति है। मनुष्य की व्यक्तिगत तथा सामूहिक सुख-षांति, सच्चरित्रता, सदभावना और सहकारिता पर निर्भर है। इन तीनों महान तत्वों का उद्गम स्थान अन्तरात्मा है। उस केन्द्र को प्रभावित करके कुमार्ग से घृणा और सत्मार्ग से प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है और यही कार्य भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक पक्ष के द्वारा किया जा सकता है। भारतीय तत्वज्ञानियों ने हजारों वर्षो के प्रयासों, प्रयोगों और परिश्रमों के बाद जिन रहस्यों का उद्घाटन किया था, उनका प्रयोग तथा समावेश इस सांस्कृतिक पक्ष में आ गया है। पहले पहल उस जीवन पद्धति का अविष्कार और क्रियात्मकप्रयोग भारतीय भूभाग पर होने के कारण इसका नाम भारतीय संस्कृति रखा गया और इस संस्कृति की विशेषताओं को इसका सांस्कृतिक पक्ष कहा गया। वस्तुतः यह मानव मात्र के लिए समान हितकारी विश्व संस्कृति है। यदि विश्व में इन हितकारी जीवन सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाय तो शांति, सौहार्द और विश्व बन्धुत्व स्थापित हो सकता है। वर्तमान 21 वीं शदी में यह बड़े दुःख का विषय है कि भारतीय विचारधारा और जीवनयापन पद्धति आज बहुत विकृत, अव्यवस्थित, उपेक्षित और अस्त-व्यस्त दिशा में पड़ी हुई हैं। उसे ठीक तरह से न समझने और परिभाषित नहीं करने के कारण हम विदेशी संस्कृतियों से प्रभावित होते जा रहा है। और उसे अपना कर आधुनिक युवा पीढी अपने आपको गौरवान्वित समझ रहे हैं गलत पथप्रदर्शन और पूरी जानकारी नहीं होने के कारण हम भारतवासियों को भारतीय संस्कृति का पूरा ज्ञान नहीं है और जो ज्ञान है वह अधूरा और अप्रर्याप्त है। गलत विचार हमारे हृदय में आरोपित किये गये है। सुयोग्य पांडित्यों के अभाव में भारतीय संस्कृति को विकृत करके रुढ़ियावाद, अंधविष्वास एवं मूढता के बड़े रुप में उपस्थित कर दिया गया है। इस दोहरे आक्रमण से आहत हुई हमारी संस्कृति और उसके सांस्कृतिक पक्ष अपना उच्च स्थान प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो सकी है। आज भारतीय हिन्दू संस्कृति के प्रमुख पर्व - त्योहार से विकसित कहानियों, उनमें निहित शैक्षिक मूल्यों को नजर अंदाज किया जा रहा है तथा भारतीय पीढ़ी को इस बहुमूल्य ज्ञान से वंचित किया जा रहा है, उसका तिरस्कार किया जा रहा है और उसकी दुर्दशा पर एक धरा

www.ignited.in

परिहास कर रहा है। पर स्मरण रहे, यही हमारे सभी प्रष्नों का एक मात्र हल है। इसकी पुर्नस्थापना द्वारा फिर देश में महापुरुष पैदा हो सकते हैं। पारस्परिक स्नेह, सद्भाव और उदारता का समावेश हमारी संस्कृति की पुरावृति से हो सकती है।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान का महान कार्य पुरा करने के लिए हमें विशाल पैमाने पर कार्यक्रम बनाना और फैलाना होगा, तभी इतने बड़े देश की इतनी बड़ी जनसंख्या में उन सुसंस्कृत तथ्यों की स्थापना संभव हो सकेगी। जितने अंषों में हम इसे आगे बढ़ाने में सफल होंगे, उतना ही सहयोग और सदभाव प्राप्त कर सकेंगे। एक बार अच्छी तरह सांस्कृतिक पक्ष की उपयोगिता समझ लेने के उपरान्त इस गतिविधि को देश व्यापी और फिर विश्वव्यापी बनाना कठिन नहीं होगा। इस स्थिति में हमें अपनी प्राचीन संस्कृति के वास्तविक एवं विशुद्ध रुप को सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित करना होगा और बताना होगा कि यह रुढिवाद, प्रतिगामिता, भ्रमजाल,संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता नहीं, वरन एक अत्यन्त ही उपयोगी बहुसंगत, तर्कसंगत, विज्ञान सम्मत, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, समाज व्यवस्था एवं मानवता की दृष्टियों से यह एक सर्वोत्कृष्ट प्रमाणिक प्रक्रिया है। तभी हम आज के बुद्धिवादी युग में भारतीय संस्कृति के महत्व को स्वीकार करने एवं उसे आचरण में लाने के लिए किसी को सहमत कर सकेंगे। इसके लिए हमें निम्नलिखित सकारात्मक बिन्दुओं पर अमल करना होगा-

- ► भारतीय संस्कृति का परिमार्जित और परिष्कृत रुप जसाधारण के समक्ष रखकर प्रमाणिकता के साथ भारतीय संस्कृति के स्वरुपों को रखना पडेगा।

- ► संस्कृति और विकृति के भेद को स्पष्ट कर जनता से पालन करने योग्य ग्राहस तत्वों को अपनाने के लिए प्रेरित करना होगा।

- ► धर्म के नियम देश, काल और पात्र के अनुसार हिन्दु परम्पराओं, रीति रिवाजों, पर्व-त्योहार आदि के अनुसार प्रचलित धारणाओं पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया जाये और उनकी उपयोगिता और अनुपयोगिता को स्पष्ट करना होगा।

- ► सांस्कृतिक आर्दश एवं व्यवहार को अपनाने पर मनुष्य को जो सुविधायें सुख शांति समृद्धि एवं सफलतायें मिल सकती है, उन्हें तार्किकता और प्रमाणिकता के आधार पर भली भांति सिद्ध करना होगा।

- ► धार्मिक और दार्शनिक विरोधों तथा मतभेदों के कारणों को बताते हुए उनका समन्वय स्थापित करना होगा।

- ► हमारी पौराणिक अलंकार गाथाओं की गूढार्थ स्पष्ट कर मनुष्यों में फैले उन भ्रमों को दूर करना होगा जिनके कारण धार्मिक अविश्वास और संदेह पनपते हैं।

- ► देवी-देवताओं का अस्तित्व विभिन्न रुप और उसके चरित्र इतिहास का स्पष्टीकरण किरना होगा और देववाद का वैज्ञानिक स्वरुप सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत करना होगा।

- ► भारतीय रीति- रिवाज, पुर्नजन्मवाद, परलोकवाद, अद्वैत-द्वैत और तैतवाद, वर्णाजम, धर्म स्पर्शास्पर्श कार्मविचारक और दार्शनिक विषयों को सरलतापूर्वक सभी को समझने योग्य रीति और उद्धरणों के साथ उपस्थित करना होगा।

- ► भारतीय आचार विचार व्यवहार, रहन सहन भाषा भेश भाव एवं परम्परओं की उपयोगिता एवं आवश्यकता को इस रुप में उपस्थित करना होगा कि जनता उनको सहज रुप से अपना ले और उनमें अपने स्वहित की बात ग्रहण करे।

- ► हिन्दू संस्कृति के प्रत्येक कर्मों, संस्कारों, कर्तव्यों और भावनाओं को गहराई और मजबूती से करने वाला बनाना होगा कि उनका उपयोग सर्वसाधरण को भी सरल लगे।

- ► पर्वो- त्योंहारों को मनाने की ऐसी रीति बनाई जाय जिससे हर एक पर्व-त्योहार कुछ न कुछ शिक्षा एवं प्रेरणा दे सके। त्योहार के उत्सव सामूहिक रुप से मनाये जाये और उसमें छुपे हुए संदेषों एवं शैक्षिक मूल्यों को समझया जाय कि उनका उपयोग साधारण व्यक्ति भी कर सके।

इन प्रयासों के द्वारा वास्तव में विवदजन भारतीय संस्कृति की उपयोगिता को तर्क और प्रमाण सहित सिद्ध करने में सफल हो सकते हैं। विद्वानों का एक मण्डल ऐसा भी हों जो ठोस जानकारी प्रस्तुत करें और शास्त्रीय दृष्टि से ही नही अपितु भौतिक दृष्टिकोण से भी भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक पक्ष के प्रबल आधार खड़ा कर सामान्य बुद्धि की

जनता एवं परिष्कृत मस्तिष्क के विधार्थियों को भी समझा सकने योग्य प्रमाणिकता प्रस्तुत कर सके।

नैतिक पक्षः- आरम्भ से ही बालकों में नैतिक जीवन या नैतिक पक्ष के प्रति कोई आस्था विकसित नहीं हो पाती है। विद्यालय में प्रवेश से लेकर उत्तीर्ण होने तक बालक जो वातावरण अपने आस-पास देखता है तदनुरुप उसी के अनुसार उनका विचार बनता है। छात्रों, कर्मचारियों, शिक्षकों की हडतालें, तोड़फोड़ प्रान्तवाद, भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद सम्प्रदायवाद आदि के दूषित प्रभाव से बालक भी अछूता नहीं रहता है। इसका प्रभाव उनमें असंतोष और विद्रोह की ओर प्रेरित होने में दिखाई देता है। अतः बालक ऐसे वातावरण में पले- बढे कि उसक जीवन सुसंस्कारित रुप से अग्रसर होता रहे। इसके लिए आवश्यक है कि बालकों में नैतिक पक्ष के गुणों से उसे अवगत कराया जाय और नैतिक शिक्षा का व्यवहारिक ज्ञान उन्हें प्रदान किया जाय।

हमें अपनी नई पीढ़ी का निर्माण सुव्यवस्थित तरीके से करना होगा पर जब तक हम वर्तमान पीढ़ी को ही नहीं सुधार पायेंगे तो भावी पीढ़ी को सुधारने के प्रति आशान्वित रहना अव्यवहारिक होगा। कोई शराबी पिता नहीं चाहता है कि उसका पुत्र शराब के लत में पडें उसके आचरण का प्रभाव उसके प्रतिबंध से ज्यादा पडता ही है। अतः जरुरत पडने पर पिता को शराब छोड़नी पडती है। पुत्र को सही रास्ते पर लाने के लिए पिता को स्वयं के स्वभाव को बदलना ही होगा साथ ही साथ आदर्श प्रस्तुत करना पडेगा। तभी पुत्र से सही कार्य, सही आचरण की अपेक्षा कर सकेंगे। बालकों को आदर्श प्रस्तुत कर सुसंस्कार पैदा करने व सुव्यवहार करने की प्रेरणा प्रदान करने के लिए अपने अर्थलोलुपता, संकीर्णता एवं अकर्मण्यता के लिवास को उतार फेंकना होगा, केवल उपदेश एवं उद्बोधन से कुछ भी नहीं होने वाला है।

नैतिक पक्ष या नैतिकता के अन्तर्गत हम सामान्यता परोपकार, कर्तव्य, सत्य अहिंसा, आचार -विचार व्यवहार आदर आदि प्रकार के चारित्रिक गुणों को ले सकते है। जिस व्यक्ति में नैतिक गुण नहीं उसका नैतिक चरित्र नहीं, वह न केवल स्वयं के अपने विकास के लिए वरन समाज व राष्ट्र के विकास के लिए भी हानिकारक हैं। नैतिक पक्ष में चरित्र के निर्माण के लिए व्यक्ति के मूल प्रवृयात्मक संवेग जितने सुसंगठित तथा नैतिक गुणों के स्थायी भाव जितने होंगे, उसका चिरत्र उतना ही श्रेष्ठ एवं सुदृढ़ होगा। वस्तुतः नैतिकता तो एक आचार संहिता हैं जो मनुष्य को अपने ज्ञान से कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करके धर्म के प्रति आकृष्ट और अधर्म से विरत रहने की प्रेरणा देते है।

भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने भी मनुष्य के नैतिक पक्ष को मजबूत करने पर बल देने का आह्वान किया है। ऐसे भारतीय विचारकों में प्रो. बैजनाथ शर्मा, डॉ. राधा कृष्णन्, मदन मोहन मालवीय, राजगोपालाचार्य चक्रवर्ती, महात्मा गाँधी गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर के साथ पाश्चात्य विचारकों में कान्ट, रिकमैन, जॉन डीवी आदि का नाम प्रमुख है जिन्होंने बालक के नैतिक पक्ष को सबल बनाने पर जोर दिया है। प्रो. बैजनाथशर्मा का कहना है कि “नैतिकता की परिभाषा यह हो सकती है कि परहित की भावना से की गई सभी क्रियायें एवं कार्य नैतिक तथा स्वार्थ की संकुचित सीमा में जकडी हुई समस्त क्रियायें और कार्य अनैतिक कार्य कहे जा सकते है।” वही भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् का कहना है कि “नैतिकता को व्यक्ति के बौद्धिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के विकास का आधार माना है नैतिकता सद्गुणों का समन्वय मात्र ही नहीं अपितु यह एक व्यापक गुण है तथा इसका प्रभाव मनुष्य के समस्त क्रिया कलापों पर होता है और साथ में व्यक्ति का व्यक्तित्व भी प्रभावति होता है।” मदन मोहन मालवीय जी का विचार है कि नैतिकता मनुष्य की उन्नति का आधार है, नैतिकता से रहित व्यक्ति पशुओं से भी निष्कृष्ट है। नैतिकता के अभाव में कोई भी व्यक्ति, समाज या देश अवश्य ही पतनोन्मुख हो जायेगा। इतिहास इस सत्य की घोषणा कर रहा है कि नैतिकता हमारा व्यापक गुण है और इसे किसी भी कीमत पर हमें नहीं छोडना चाहिए। इसी प्रकार राजगोपालाचार्य चक्रवर्ती ने कहा है कि विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण नैतिक शिक्षा से ही संभव है और उसी के आधार पर राष्ट्र का विकास व निर्माण हो सकता हैं “इसी तरह भारतीय विचारकों के साथ -साथ पाश्चात्य विचारकों ने भी नैतिकता के पक्ष में अपने - अपने विचारों को मनुष्य को अपने आचरण में सन्निहित करने हेतु उद्गार व्यक्त किये है। कॉन्ट महोदय का मानना है कि शास्त्र सम्मत नियमों के पालान में नैतिकता विद्यमान रहती है और नैतिक प्रशिक्षण के द्वारा ही पाशविक स्वभाव को मानवीय स्वभाव में परिवर्तन कर अनुशासित करना ही नैतिकता है।” उसी तरह रिकमैन ने अपनी पुस्तक ईयर बुक ऑफ़ एजूकेशन (1912) में यह विचार व्यक्त किया है कि “नैतिकता किसी में उपजाई नहीं जाती है वरन यह तो अपने ढंग से तथा अपने समय से ही विकसित होती है। यह तो हमारे पस्तिष्क में स्थापित अच्छे सम्बन्धों की जिन्हें हम सभी के व्यवहारों तथा कार्यो में देखते हैं, उसकी अभिव्यक्ति है। जौन डीवी महोदय का मत है कि संसार में प्रक्रिया और परिवर्तन चलते रहते है, अतः मूल्य कभी अपने आदर्श रुप स्थिर नहीं रह सकते है। वे तो व्यक्ति के व्यक्तिगत सामाजिक कार्यो तथा गतिविधियों से निवृत होते है। अतः विचार कार्यो सेही उद्भूत होने चाहिए एवं कार्यो के अधीन भी। इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के कथनों को मानते हुए कहा जा सकता हैं कि

वर्तमान में हम या हमारा शैक्षिक व्यवस्था (पाठयक्रम) बालकों में नैतिक शिक्षा के कार्यक्रम द्वारा भावी पीढी को सोचने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

आज हमें सर्वाधिक आवश्यकता इंसान की है न कि डॉक्टर, इन्जिनियर या अध्यापकों की। शिक्षा के नैतिक पक्ष की अवहेलना का यही परिणाम है कि आज हम चाँद सितारों तक जा पहुँचे है लेकिन धरती पर इंसान की तरह चलना भूलते जा रहे हैं, और तभी तो सुयोग्य चिकित्सकों के होते हुए मर्ज और मरीज बढते जा रहे हैं और कुशल इन्जिनियरों के होने के बावजूद भी भवन बाँध और सड़कों में आये दिन दरारें रही है तथा उच्च शिक्षा प्राप्त प्रशिक्षित अध्यापकों के होते हुए भी शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। यह सोचनीय और चिन्तनीय विषय है। आज लोगों में ना तो कर्तव्यनिष्ठा कार्य के प्रतिद्धता और न ही कत्र्तव्यपरायणता के भाव दिखाई दे रहे है ना ही देश प्रेम व एकता के भाव और ना हीं ईमानदारी दिखाई देती है। आज अपनी बुद्धि का उपयोग हम स्वार्थ साधन हेतु केवल अर्थसंचय में करते है। यह तथ्य बिल्कुल गलत है, अगर शिक्षा और नैतिकता का यही अर्थ व स्वरुप है अथवा निष्पादन है तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि न तो हम ऐसी शिक्षा से बालकों को कुछ सीखा सकते हैं और ना हीं बालको का सर्वांगीण विकास करने में सफल होंगे। सभी शिक्षाविदों, चिन्तकों, विचारकों और समाजशास्त्रियों का मानना है कि शिक्षा का ध्येय पूर्ण मानव का निर्माण करना है ताकि समाज में चेतना व जागृति के भाव उत्पन्न हो सके और बालक समाज का सुनागरिक बनकर समाज व राष्ट्र को नवीन दिशा प्रदान करने की प्रेरणा ग्रहण कर सके। मूल्य परक नैतिक शिक्षा का आयाम विस्तृत है। नैतिक शिक्षा का आयाम सूक्ष्म या एकांकी नही वरन विराट और व्यापक है। नैतिक शिक्षा तो धर्म, कर्म और मानवता के मूल्यों की शिक्षा है।

मूल्यपरक शिक्षा वस्तुतः नैतिक शिक्षा है। इसमें अंतर केवल दृष्टि और दृष्टि के विस्तार का है। मनोवैज्ञानिक गेस्टाल्ट के अनुसार प्रारम्भ में हम किसी वस्तु को पूर्ण रूप से देखते है और फिर अंश की और प्रयाण करते हैं।

हिन्दू संस्कृति में नैतिक शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व था। पहले लोगों में नैतिक गुण प्रचुरता में पाये जाते थे। अतः बड़ों की आज्ञा का पालन करना, लोभ नहीं करना, कृतज्ञता, आध्यात्मिकता, विनम्रता, सदाचारिता, नियमों का पालन करना, सत्य की हमेशा जीत आदि नैतिक गुणों के दर्शन हमें हिन्दू संस्कृति के त्योहार की कथाओं में पग-पग पर होते हैं। प्रत्येक कहानी हमें कोई न कोई शिक्षा अवश्य प्रदान करती है। हिन्दू संस्कृति प्रमुख त्योहार की कथाओं में शिक्षा का पक्ष अत्यन्त विस्तृत है किन्तु शोध परिसीमन करते हुए हमने केवल धार्मिक, वैज्ञानिक सामाजिक एवं नैतिक पक्ष को उभारा है।

लोकसंस्कृति की रक्षक पक्षः- आज प्राय लोग त्योहार से जुड़ी लोक संस्कृति की रक्षा के लिए चिन्ता व्यक्त करते हैं। पर यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि जब तक भारतीय नारी आदिम संस्कारों से बंधी रहेगी, तब तक ये सुरक्षित रहेंगे और इनको सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका होगी इन त्योहार के पीछे निहित कहानियों की।

संगठितताः- होलिकोत्सव सामूहिक, मित्रभाव, उत्साह व उमंग का पर्याय बन चुका है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक नए अन्न के दानों को देवताओं को अपिर्त कर होली का पर्व मनाते है - वैसे भी संस्कृत में भूने हुए अन्न को होलका कहते हैं।

इस दिन सामान्य जन सभी भेदभाव मिलाकर रंग-बिरंगे गुलाल अथवा पानी से होली खेलते हैं। गोकुल-मथुरा में यह पर्व अति उत्साह, रासलीला एवं लोकगीतों के साथ मनाया जाता है। यह एक विश्वव्यापी पर्व है। मुगलकाल के समय पर्यटक अलबरूनी ने इस पर्व का उल्लेख अपने वृतान्त में विस्तार से किया है। इस प्रकार यह त्योहार हमारी राष्ट्रीय एवं सामाजिक एकता को सुदृढ़ करता है। यह एक ऐसा पर्व है जो समता की शिक्षा देता है। ब्राहमण और हरिजन में कोई भेद-भाव नहीं रहता। साम्प्रदायिकता प्रान्तीयता के साथ-साथ लिंग का भेद समाप्त हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह पर्व संकीर्ण संस्कारों और रूढ़ियों का विनाश करते हुए हनदय पर ही पूरा बल डालता है

आत्मिक शक्तिः- त्योहार की कहानियों के पीछे गहरे सांस्कृतिक मर्म छिपे रहते हैं। इनका एक उद्देश्य तो ऐतिहासिक हर्षदायक अवसरों का स्मरण करनां दूसरा उपवास करके मानसिक और आत्मिक उपलब्धि प्राप्त करना।

उदाहरण के लिए चाँद की पूजा करने और चाँद देखकर व्रत तोड़ने वाले त्योहार अर्थात् करवाचौथ आदि के अवसर पर अगर चाँद न दिखे, तो न पूजा होती थी और न जल ग्रहण होता था। निश्चय ही इन सबसे आत्मिक शक्ति का अर्जन होता है।

विरोध में भी सामंजस्यः- हिन्दू संस्कृति स्वयं एक ऐसा उदाहरण है जिसने विभिन्न विरोधी तत्वों को भी अपने में सामाहित कर लिया। भगवान शिव के परिवार के सदस्यों के

वाहन भी अर्थात् चूहा (गणेश जी का) मोर (कार्तिकेय का), सर्प (भगवान शिव का) तथा सिंह (पार्वती जी का) इन वाहनों में आपस बेरहोने पर भी ये एक ही परिवार से किस प्रकार परस्पर सामंजस्य रखकर जुड़े हुए हैं। इस प्रकार यह उदाहरण आज भी परिवार को बिखरने से बचाने तथा परिवार में विरोधी तत्वों के होने पर उन्हें परस्पर जोड़े रखकर प्रेमपूर्वक रहने का आदर्श प्रस्तुत करता है।

नारी शक्ति स्वरूपा:- हिन्दू संस्कृति में नारी को शक्ति स्वरूपा माना गया है। नवरात्रा में नौ दिन तक शक्ति के नौ रूपों की स्तुति की जाती है जो कहीं सात्विक स्वरूपा है तो कहीं दुष्टों का दमन करने के लिए चण्डी, काल रात्रि का रूप धारण कर लेती है तो कहीं उसमें ब्रहमचारिणी महागौरी आदि के रूप में सौम्यता झलकती है। इससे पता चलता है कि -प्राचीन काल में भी स्त्रियों को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। नारी के सम्बन्ध में यहां तक कहा गया है कि:-

यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता

अर्थात् जहां नारियों की पूजा की जाती है, वहीं देवता निवास करते हैं।

मूल्यपरक शिक्षा ही वस्तुतः नैतिक शिक्षा है। इसमें अंतर केवल दृष्टि और दृष्टि के विस्तार का है। मनोवैज्ञानिक गेस्टाल्ट के अनुसार प्रारम्भ में हम किसी वस्तु को पूर्ण रूप से देखते है फिर अंश की और प्रयाण करते है। हम पूर्णता से खण्ड-खण्ड और पुनः खण्ड-खण्ड से पूर्ण की और जाते हैं। जब हम मूल्यों को समग्र रूप से देखते हैं तो इसे हम नैतिक शिक्षा कह सकते हैं, किन्तु जब हम खण्ड रूप में देखते हैं तब ही इसे हम नैतिक शिक्षा भी कह सकते हैं। हमारी प्रारम्भिक यात्रा में यह नैतिक शिक्षा है, खण्ड-खण्ड रूप में मूल्यों की दृष्टि से मूल्यपरक शिक्षा और समग्र रूप में यह नैतिक शिक्षा है। हिन्दू संस्कृति से पूर्व में नैतिक शिक्षा का अत्यधिक महत्व था। पहले लोगों में नैतिक गुण प्रचुरता में पाये जाते थे। अतः बड़ों की आज्ञा का पालन करना, लोभ नहीं करना, कृतज्ञता, आध्यात्मिकता, विनम्रता, सदाचारिता, नियमों का पालन करना, सत्य की हमेशा जीत आदि नैतिक गुणों के दर्शन हमें हिन्दू संस्कृति के त्योहार की कथाओं में पग-पग पर होते है। प्रत्येक कहानी हमें कोई न कोई शिक्षा अवश्य प्रदान करती है। हिन्दू संस्कृति प्रमुख त्योहार की कथाओं में शिक्षा का पक्ष अत्यन्त विस्तृत है किन्तु शोध परिसीमन करते हुए हमने केवल धार्मिक, वैज्ञानिक सामाजिक एवं नैतिक पक्ष को उभारा है।

अतः हिन्दू संस्कृति के प्रमुख त्योहार की कहानियां रूपी अथाह वेतरणी में डुबकी लगाकर नैतिक गुणों रूपी कुछ यत्नों का चयन कर हम उन्हें प्रसारित करने का प्रयास कर रहे हैं।

सौम्यता एवं विनम्रता:- माँ दूर्गा दुष्टों का दमन और विनाश करने में सदैव तत्पर रहती है। प्रायः सिंह इनका वाहन है तथापित इनका स्वरूप आराधक के लिए अत्यन्त सौम्य एवं शांतिपूर्ण रहता है। इनकी आराधना से प्राप्त होने वाला सबसे बड़ा सद्गुण यह भी है कि आराधना में वीरता व निर्भयता के साथ सौम्यता एवं विनम्रता का भी विकास होता है। ऐसी मान्यता है कि इनकी उपासना से आराधक के सभी दैत्य, दुःख, पाप-सन्ताप, कल्मश भय नष्ट हो जाते हैं तथा एक अलौकिक प्रभामण्डल अदृश्य भाव से सदैव उसके चतुर्दिक परिव्याप्त रहता है-यह प्रभामण्डल प्रतिक्षण उसके योग क्षेम को निर्वहन करता रहता है।

सत्य की महत्ता:- हिन्दू संस्कृति में सत्य की महत्ता तथा विजय दर्शाने वाली अनेक कहानियां त्योहार से जुड़ी हुई हैं - यथा दशहरा लंकापति रावण पर राम की विजय की याद में मनाया जाता है। राम की विजय से सर्वसाधारण जन समुदाय को प्रतीत होता है कि असत्य, अधर्म, अत्याचार, दानवता, पाप और हिंसा पर सत्य, धर्म सदाचरण, मानवता, पुण्य व अहिंसा की विजय हुई है।

अहिंसा पर बल:- हिन्दू संस्कृति में जीवों पर दया दृष्टि रखने पर अत्यधिक बल दिया गया है इस बात का प्रमाण इसके त्योहार के पीछे निहित कहानियां है। कजरी तीज की कथा में शेर द्वारा गाय व बछड़े को छोड़ने तथा महाशिवरात्रि की कहानी में बहेलिये द्वारा अन्ततः हिंसा त्यागकर मृग परिवार को छोड़ने के पीछे अहिंसा वृत्ति अपनाने पर जोर दिया गया।

आज्ञाकारिता:- हिन्दू संस्कृति में बड़ों की तथा गुरू की आज्ञा का पालन करना मनुष्य का परम् कत्र्तव्य माना गया है। हिन्दू संस्कृति के त्योहार की कहानियां भी हमें यही शिक्षा देती है। गणेश चतुर्थी की कथा में गणेश जी अपनी माँ की आज्ञा के पालन के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं।

सदाचारिता:- हिन्दू संस्कृति मे शील पर पुरा जोर दिया गया है। बहुत सी कथाऐं ऐसी आई है जिनसे शील-सदाचार का महत्त्व पूरा-पूरा प्रकट होता है। जैसे तीज के त्योहार पर चोरी न करने, पति से झूठ न बोलने तथा कपट-पूर्ण व्यवहार न करने के लिए कहा गया है।

कर्मनिष्ठा:- हिन्दू संस्कृति कर्मनिष्ठा की कद्र करना जानती थी। जिस समाज में कर्मनिष्ठ व्यक्ति होते हैं वही समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं। महाशिवरात्रि की कथा में बहेलिया पूरी निष्ठा के साथ अपने कर्म में लगा रहता है तथा अन्त में मृगों की सत्यनिष्ठा से प्रभावित हो उसका ह्नदय परिवर्तन हो जाता है तथा वह भगवान शिव के परमधाम को सपरिवार प्राप्त कर लेता है।

क्षमाशीलता:- हिन्दू संस्कृति में क्षमाशीलता की एक तरह परम्परा रही है। क्षमा को मनुष्य का एक श्रेष्ठ गुण माना गया है। करवाचौथ की कहानी में भी भाईयों द्वारा बहिन को झूठा चाँद दिखाकर व्रत तुड़वाने पर जब चौथ माता क्रोधित हो जाती है, जब बहिन द्वारा माता से क्षमा-याचना व प्राश्चित करने पर मां उसे क्षमा कर उसके पति को पुनः जीवनदान प्रदान कर देती है।

निष्कर्ष

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आधार पर केन्द्री स्तर पर जो रणनिति तैयार की गई है, उसमें भी राष्ट्र में गिरते हुए विविध जीवन-मूल्यों के प्रति चिन्ता व्यक्ति की गई है। मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठा के लिए मूल्यपरक शिक्षण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है। मूल्यपरक शिक्षा आज समय की मांग बन गई है। अतः इसे शीघ्रतिशीघ्र लागू करने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् को इसके स्वरूप एवं तदर्भ आवश्यक क्रियान्विति-योजना निर्धारित करने का कार्य सौंपा गया है। एतदर्थ पुरस्सृत निम्नांकित नीति निर्देश लक्ष्यनिष्ठ है। "सारभूत मूल्यों के गिरते हुए स्तर के प्रति बढ़ती हुई चिन्ता और समाज में बढ़ती हुई कटुता से यह जरूरी हो गया है। कि पाठ्यचर्या में पुनर्समायोजन लाया जाए ताकि शिक्षा को सामाजिक, नीतिपरक और नैतिक मूल्य पैदा करने के लिए एक सशक्त साधन बनाया जा सके। हमारे सांस्कृतिक और विराट समाज में शिक्षा के जरिये विकसित किये जाने वाले मूल्यों में सार्वभौमिक भावना होनी चाहिए और इनसे हमारे लोगों में एकता और एकीकरण की भावना विकसित होनी चाहिए। इस प्रकार की मूल्य शिक्षा रूढ़िवाद, धार्मिक कट्टरता, हिंसा, अन्धविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त करेगी। इस निर्णायक भूमिका के अतिरिक्त, मूल्य शिक्षा की एक गहन ओर ठोस विषयवस्तु हमारी विरासत, राष्ट्रीय और सार्वभौमिक उद्देश्य और विचारों पर आधारित है। इसमें इस पहलू पर मुख्य रूप से दिया जाना चाहिए।"

संदर्भ

1. चतुर्वेदी शुभ्रा - शिक्षा के रुप एवं सांस्कृति धरोहर, जयपुर।

2. गुप्त एन.एल. - संस्कृति के सात सौपान, राधा पब्लि0 दिल्ली।

3. शास्त्री कला नाथ - संस्कृति के वातायन, युनिक ट्रेडर्स, जयपुर।

4. शर्मा शंकरदयाल – संस्कृति और शिक्षा, पंकज पुस्तक मंदिर, दिल्ली।

5. मिश्रा सुनील - हिन्दूऑन के व्रत एवं त्योहार, अरुण प्र. दिल्ली।

6. बैट्सिलिस जी विट - घर-घर पूतित हिन्दू देवी-देवता, राधाकृष्ण प्रका. दिल्ली।

7. कुमार विनय - भारतीय पर्वों की वैज्ञानिकता, सेठी प्रका., बरेली।

8. चौधरी सुनीता - राष्ट्रीय उत्सव एवं जयन्तियाँ, अनु प्रका. जयपुर।

9. व्यास निर्मला - आओं पर्व मनायें, शिल्पी प्रकाशन, जयपुर।

10. जैन रोशन लाल - हमारे पर्व त्योहार, देवनागर प्रका. जयपुर।

11. कुमार विनय - भारतीय पर्वों की वैज्ञानिकता, सेठी प्रका., बरेली।

12. मिश्रा सुनील - हिन्दूओं के पर्व एवं त्योहार, महालक्ष्मी प्र. दिल्ली।

13. सिंह हरिहर - हमारे पर्व एवं त्योहार, अरुण प्रकाशन, दिल्ली।

14. अग्निहोत्री यमुनासिहं - दिन-दिन पर्व, नेशनल पब्लि., दिल्ली।

Corresponding Author

Manish Kumar*

Research Scholar, R. R. B. M. University, Alwar, Rajasthan